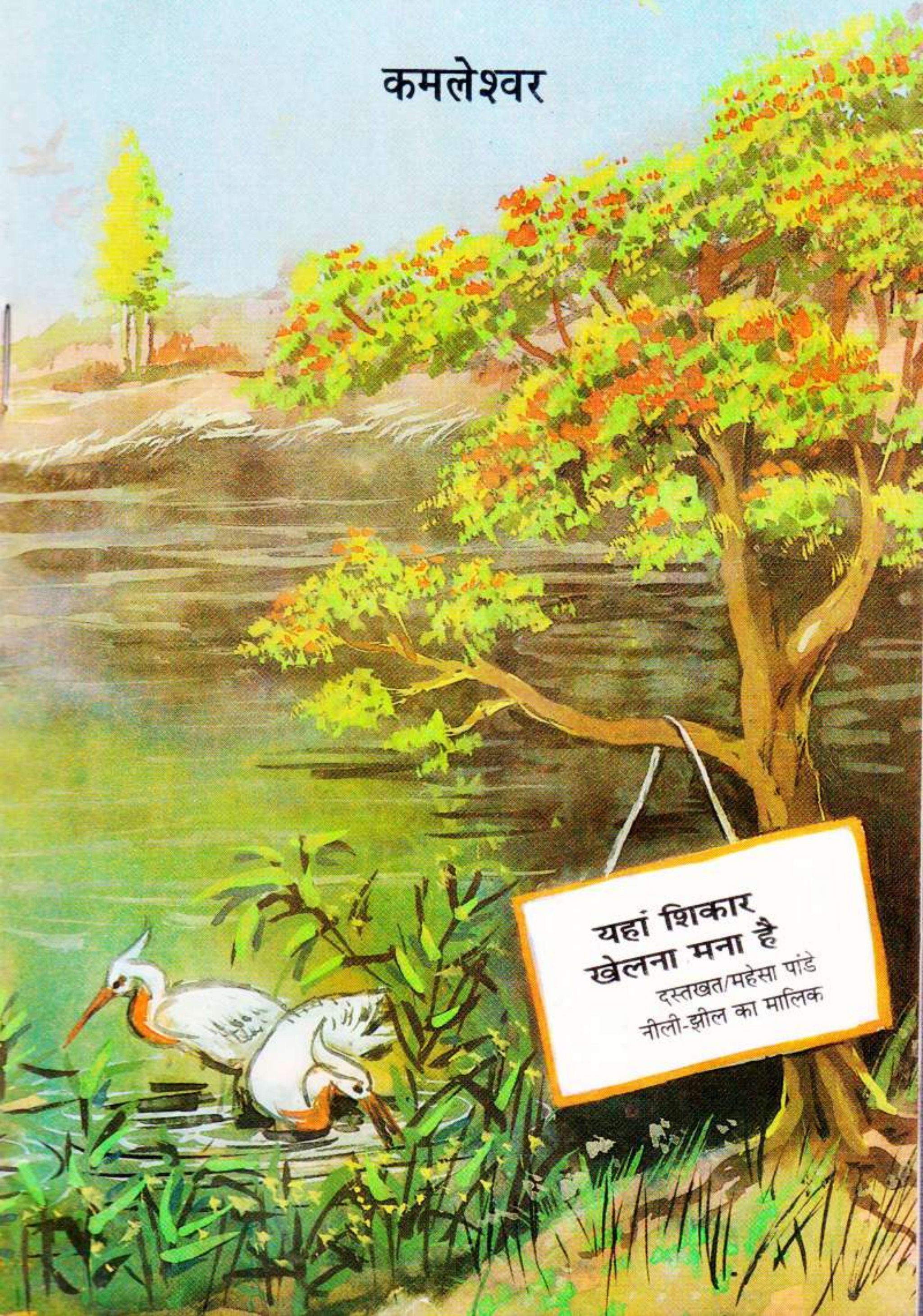
नीली-झील

कमलेश्वर



यह पुस्तक के. के. बिड़ला फाउंडेशन के अनुदान से तैयार की गयी है।

ISBN 81-237-1763-6

पहला संस्करण : 1996
तीसरी आवृत्ति : 2006 *(शक 1928)*

Neeli Jheel *(Hindi)*

रु. 8.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

नवसाक्षर साहित्यमाला

नीली-झील

कमलेश्वर

रूपांतर

रमेश थानवी

चित्र

दीपक दास

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया



एक थी नीली-झील। पेड़ों के घने झुरमुट से घिरी थी। पानी से लबालब भरी थी। कांच की तरह चमकती थी। बहुत दूर से ही दिख जाती थी। जो भी इसे देखता मन मोह लेती थी।

एक बार एक अंगरेज कलेक्टर ने कहा था—'कितनी खूबसूरत है यह झील। जैसे धरती में हीरा जड़ा हो। ... झील तक पहुंचने का पक्का रास्ता तो होना ही चाहिए।'

अंगरेज कलेक्टर का मन मोह लिया था नीली-झील ने। वह अपनी मेम के साथ आया था। इस बार उसके साथ मजदूरों की गेंग भी आयी थी। यह गेंग झील तक सड़क बनाने आयी थी। सड़क नहीं होने के कारण साहब की मोटर-कार को धक्का देना पड़ा था। धक्का देते हुए महेसा ने मेम को देखा। उसे लगा था कि मेम की आंखें नीली-झील की तरह हैं। महेसा को फूल-सी मेम बहुत अच्छी लगी थी।

महेसा इस गेंग के साथ सड़क बनाने आया था। [illegible] देखकर उस पर-भी रंग चढ़ गया था। शरीर [illegible] शेतान था। स्वभाव से शौकीन और रंगीला। उसी संगत में उसने रात नाचते हुए गाया था—'होए मेमिया, तोरी अंखिया बड़ो जुलम ढायो री।' पीतल की थाली ठनक उठी थी। बाटियां पकाते भूखे व थके मजदूरों की आंखों में चमक आ गयी थी। वे पल भर के लिए तन की पीड़ा को भूल गये थे। इधर भजनू और होरी को अच्छा नहीं लगा था। वे जल भुन रहे थे। उनको डर था—'हम सब की रोजी जाएगी।'

मजदूर महेसा पर जल-भुन रहे थे। वे मेट से महेसा की शिकायत करने की सोच रहे थे। मगर महेसा नाच रहा था। इसी समय तीखी आवाज में चीखता एक सारस अंधेरे आसमान से गुजर गया। उसकी आवाज में कोई टीस थी। सारस की आवाज उस सूने जंगल में गूंजती रही थी। टीस महेसा के कलेजे में उतर गयी थी। महेसा ने नाचना बंद कर दिया था। महेसा जैसे इन पक्षियों की बोली जानता था। बड़ा लगाव था उसके मन में।

"अब सीधा हो के बैठ, रोटी खा ले।" यह काने मेट की आवाज थी। नाराज साथियों को महेसा और मेट का यह अपनापन अच्छा नहीं लगा था। भजनू ने

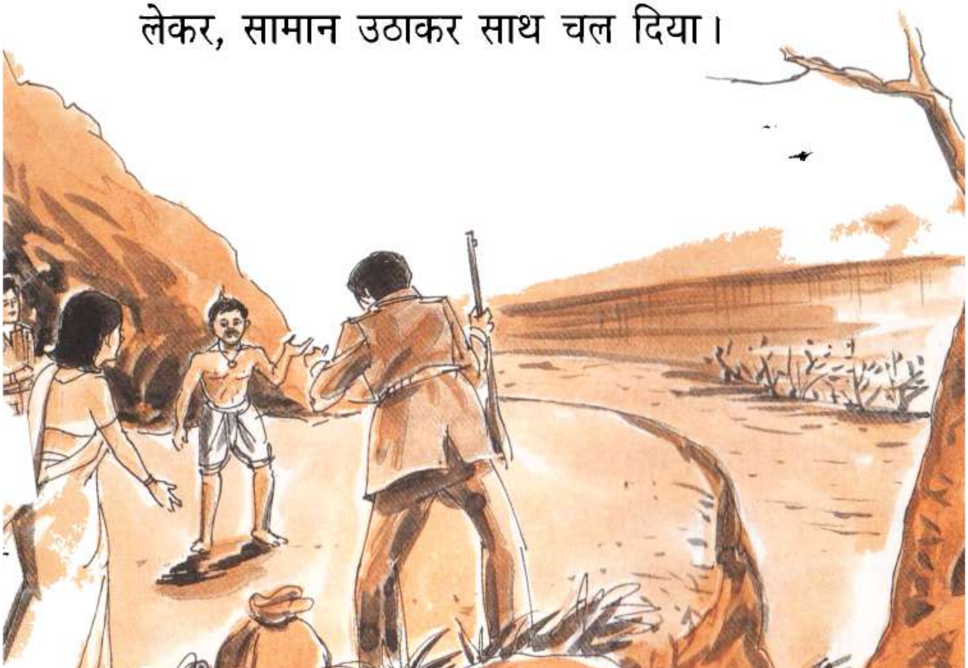
धीरे से कहा था—"बदमाश ने मेट को खुश कर दिया है।"

गुदारी बाटियों और उड़द की पकी हुई दाल की महक से सबकी भूख चमक आई थी। बड़ी रात बतकही के बीच खाना चलता रहा। धीरे-धीरे चूल्हों की आग भी अलसा गई थी। पेड़ों का अंधेरा घना हो गया था। थोड़ी देर पहले ही नाचता-गाता मजूर-टौला रात की खामोशी में दुबक गया था।

दूसरे सवेरे ही सैलानियों की पार्टी आयी थी। कुछ हिंदुस्तानी साहब लोग थे और साथ में कुछ सुंदर औरतें। औरतों के कंधों पर कैमरे लटक रहे थे। साहब लोगों के कंधों पर हवाई-बंदूक व कारतूसों की पेटियां। खाने-पीने का सामान कंडियों में भरा था। ये बोझ इनसे उठाये नहीं उठ रहा था। उन्हें रुका देख कर मजूर लोग उनके रुकने का मतलब भांप गये थे। मगर सभी अपने काम में मशगूल थे।

मजदूरों के इस दल में महेसा ही ऐसा था जो ऐसे ही किसी मौके की ताक में रहता था। वह आज भी इसी ताक में था कि 'वह नीली साड़ी वाली औरत अगर कहेगी तो वह सामान उठा कर साथ चल देगा।' हुआ भी ऐसा ही। उसी नीली साड़ी वाली ने कहा—"कोई

मजूर मिलेगा क्या?" महेसा को यह बात नहीं जंची। उसका अहंकार जाग गया। बोला—'मजूर-वजूर नहीं, हम लोग सरकारी गेंग के आदमी हैं।' नीली साड़ी वाली का जवाब था—"अरे भाई, जरा-सी मदद चाहिए... यह सामान झील तक पहुंचाना है।' इतना काफी था महेसा के लिए। वह क्षण भर के लिए उसके सुंदर चेहरे व साफ दांतों को देखता रहा और फिर मेट से इजाजत लेकर, सामान उठाकर साथ चल दिया।



नीली-झील आ गई थी। सैलानी लोग लंबी सांस छोड़ कर यहीं पसर गये थे। हवा की ठंडक में अपनी थकान दूर करती हुई औरतें अपने बालों की लटें सुलझा रही थीं। सबने जैसे अपने आपको इस मन-मोहक झील के हवाले कर दिया था।

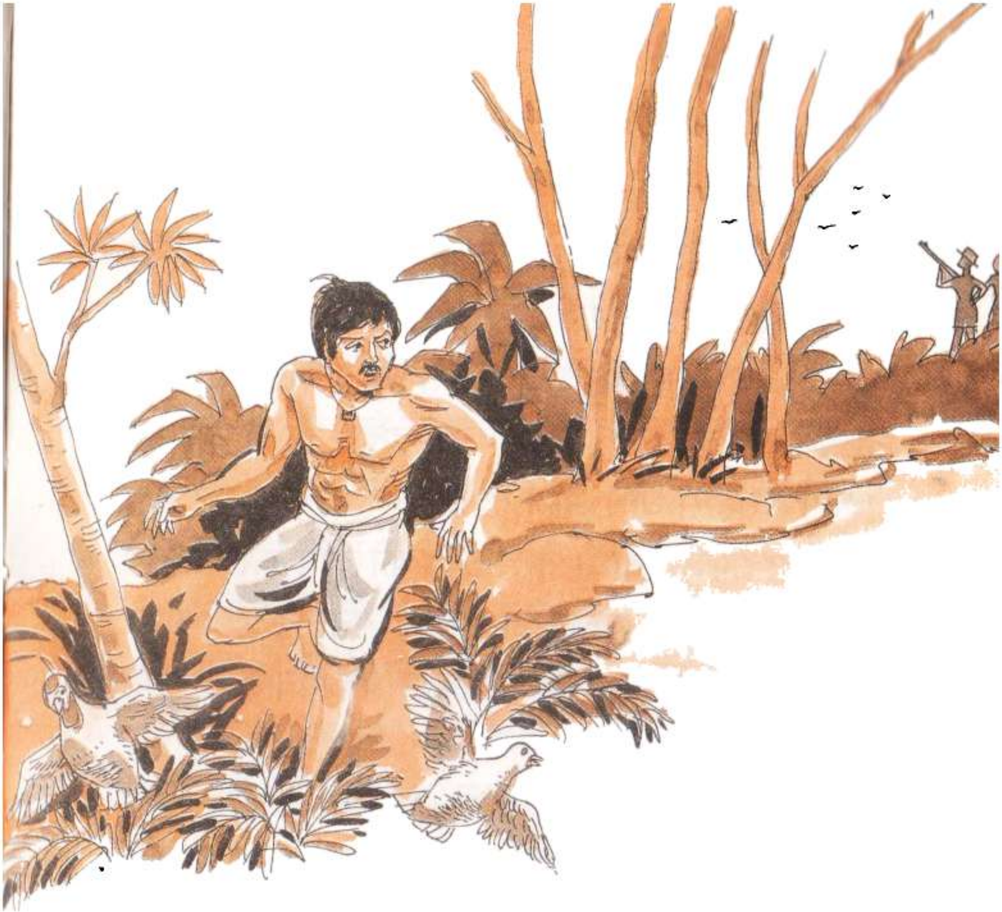
झील का अपना एक परिवार था। इस परिवार में देवहंसों, मुर्गाबियों व पतारी के झुंड थे। बादल थे, नरकुल थे और घना झुरमुट था। इस झुरमुट के पेड़ों की टहनियों पर चहकती चिड़ियों के परिवार थे। सुरखाब, जंगली बतख, चाहा, बगुला, सारस, सरपपच्छी जैसे कई पक्षी इस झील के नाता-नाती थे। झील से इनका रिश्ता ही कुछ ऐसा था। कई पक्षी तो दूर देश से आते थे। मौसमी-मेहमानों की तरह रहते थे—बसेरा करते थे और लौट जाते थे। झील पर आने वाले सैलानी भी इन्हीं पक्षियों में रम जाते थे।

आज भी वह नीली साड़ी वाली औरत सरपपच्छी को पानी में तैरता देख हैरत से चिल्लाई थी—"पानी का सांप। सांप तैर रहा है।" सभी कुतूहल से देख रहे थे। महेसा खिलखिला कर हंस रहा था। कैसे समझाये इन साहब लोगों को! वे इतना भी नहीं जानते। फिर भी उसने नीली साड़ी वाली औरत को समझाया था कि

"यह सांप नहीं, सरपपच्छी है। वही काली चिड़िया। तैरने का बहुत शौकीन होता है।" महेसा समझा रहा था और उसके सफेद दांतों को निहार रहा था। नकटा के पंखों की तरह धुले व चमकदार। महेसा का मन जाने को नहीं हो रहा था मगर मेट और साथियों का डर भी उसे सता रहा था।

उधर एक साहब को बंदूक संभालते देख उसका मन अचानक उचट गया था। नीली साड़ी वाली औरत का ध्यान भी अब बंदूक पर टिका था। उनके ही एक साथी ने महेसा को मजूरी के पैसे दिये। पल भर पहले का महेसा अपना सारा आवेश भूल कर चल दिया था। उसका मन भारी हो गया था। आंखों के सामने बार-बार वह बंदूक घूम रही थी। कानों में चिड़ियों का शोर समाया हुआ था। वह हर पक्षी की आवाज पहचानता था। उनकी भी जो यहां के बाशिंदे थे और उनकी भी जो मौसमी मेहमान की तरह आते थे। महेसा जैसे हर पक्षी की बोली समझता था। हर आवाज का अर्थ जानता था।

महेशा के कानों में चिड़ियों की आवाज थी और मन में बंदूक की याद। उसका दिल धड़क रहा था। वह तेज कदमों से चल रहा था। इतने में बंदूक चली



थी। गोली की कड़कती आवाज बादलों में गूंज गई थी। यह गोली महेसा के मन पर लगी थी। उसका मन उदास हो गया था। पक्षियों की कातर आवाजों को वह जहर के घूंट की तरह पी रहा था। उसकी चाल तेज हो रही थी। उसके मजूर साथी काम पर लगे दिख रहे थे। वह लौट रहा था। आया और काम में जुट गया था।

आज रात जब चूल्हे जले तब महेसा नहीं था। वह पारबती पंडिताइन के घर पहुंच गया था। पक्षियों की कातर आवाजों से घिरे महेसा को आज पनाह की जरूरत थी। सहारे की जरूरत थी। आसरे की जरूरत थी। पारबती के पास पहुंच कर उसे ये सब मिला था। नीली-झील के बाद पारबती पंडिताइन ही महेसा का एकमात्र सहारा थी। आज के बाद महेसा काम पर नहीं लौटा था। मजूर साथी तरह-तरह की बातें कर रहे थे। गांव वाले भी इन बातों का बतंगड़ बना रहे थे। मगर महेसा बेपरवाह था। वह पारबती की पनाह में नया आदमी बन रहा था।

पारबती पंडिताइन गांव की एक विधवा औरत थी। रूप की रंभा थी। कद-काठी से सुडौल थी। 'दस गांव में ऐसी औरत नहीं मिलेगी। का रूप है, का काठी है। राम कसम।' भजनू ने कहा था। कुबड़ा चरन सिंह भी उसके रंग-रूप की तारीफ कर रहा था।

पारबती के पास पैसा था। ब्याज-बट्टे का काम भी कर रही थी। घी-मेवा खाती थी। ठसके से रहती थी। ऐसे-वैसे को कभी उसने घास नहीं डाली थी। गांव के ठाकुर ने जान दे दी थी मगर उसने नजर नहीं मिलाई थी। लोगों का अंदाज था कि महेसा पंडिताइन का पैसा

देख कर ढरक गया है। किसी और ने कयास लगाया था कि महेसा की उमर और कद काठी के कारण पारबती ने उसे फांस लिया है। जितने मुंह उतनी बातें थीं। सच तो यह था कि महेसा ने पारबती पंडिताइन से ब्याह रचा लिया था। दोनों साथ रहने लगे थे। पारबती ने भी नये जीवन की शुरुआत की थी। बरसों बाद पंडिताइन फिर सुहागिन हुई थी। इतने दिनों बाद जब उसकी मांग में सिंदूर और गोरे माथे पर बिंदिया चमचमाई थी तो उसका रूप दुगना हो गया था।

महेसा भी साफा बांध कर खूब सुंदर लगता था। पारबती के कहने से उसने बड़ी-बड़ी कलमें रखवाई थीं। चोटी में मोटी-सी गांठ बांधता था। मूंछें छोटी करवा ली थीं। मेले-तमाशे में जाने के लिए बैलों की एक जोड़ी खरीद ली थी और छोटा-सा रब्बा भी खरीद लाया था। बैलों को खूब सजा कर रखता था। उनके गले में चालीस घुंघरुओं की माला थी—सींगों पर पालिश लगाई थी। रब्बे की छत के लिए रंगीन झालर पारबती ने सी थी। गछिया वह दरजी से सिलवा लाया था। सतरंगी रब्बा था महेसा का। एक दफा दौड़ में दांव भी लगा आया था। पारबती के पीछे पड़ गया था—"तुम साथ नहीं बैठोगी तो दौड़ में नहीं जाऊंगा।" पारबती ने समझाया

था—"हमारा तमासा दिखाओगे? बहुत लड़कपन है तुम में।"

महेसा में थोड़ा लड़कपन भी था। यह लड़कपन पारबती से ब्याह के बाद बढ़ गया था। उम्र का फरक भी था ही। कहते हैं कि पारबती चालीस की रही होगी और महेसा कोई पच्चीस बरस का। पारबती की उम्र दिखती नहीं थी। रूप रंग की वह वैसे ही अच्छी थी। ब्याह की उमंग ने उसे और भी जवान बना दिया था। महेसा ने कहा था "..... बतिया बछरी से दांत हैं अभी, बात बड़ी बूढ़ियों की तरह करती हो। सरम नहीं आती?"

दोनों के बीच ये हंसी-मजाक व दिल्लगी रोज की बात थी। मगर पारबती बड़ी समझदार व चतुर थी। मेले की दौड़ के लिए जाते-जाते पारबती ने रास्ते में महेसा को मना लिया था। बहुत चतुराई और प्यार से। बिना कोई मलाल पैदा किए। पारबती रुपये का लेन-देन करती और सबकी चोटी अपने पांव के नीचे रखती थी। बस्ती में कोई ऐसा नहीं था जिसे रुपये-पैसे की कभी जरूरत न पड़ी हो। पीठ पीछे लोग बातें जरूर करते थे मगर सामने किसी की हिम्मत नहीं होती।

महेसा अब मस्त हो गया था। उसे कोई चिंता नहीं

थी। न कमाने की, न खाने की। पारबती चाहती थी कि महेसा बस्ती में बिखरे पैसे को अवेरे, कारोबार में मदद करे। मगर महेसा तो महेसा ही था। आज भी वह झील की ओर जाते सैलानियों में कोई सुंदर औरत दिखे तो उसके पीछे हो लेता था। अपने को रोक नहीं पाता था। चाहता था कि वह औरत उससे बात करे। औरत उससे बात न करती तो वह चिड़ियों में मस्त हो जाता था। झील के किनारे चक्कर काटता। नरकुलों के बीच साबूदाने की तरह बिखरे मछलियों के अंडे देखता। नीलपक्षी के जोड़ों को देर तक देखता रहता। अपनी सुध-बुध खो देता। अचानक घर की याद आती तो लंबे डग भरता घर लौटता। चिड़िया और नीली-झील महेसा के मन का सहारा थीं। एक बार वह दिन भर नहीं लौटा था। आधी रात गये घर लौटा तो पारबती ने उलाहना दिया था– "झील पर घूमके मन नहीं भरता।" पारबती के उलाहने का वह कभी बुरा नहीं मानता था। पारबती ने जब रुपया वसूलने की बात कही तो भी उसने साफ मना कर दिया था–'यह हमसे नहीं होगा।'

पारबती ने बात बदल कर कहा था–"अच्छा सुनो। मेरा मन है कि कुछ रुपया लगा के इस चबूतरे पर एक मंदिर बनवा दिया जाये। बन सके तो मुसाफिरों के लिए



दो कोठरियां भी। हारे-थके लोगों को आराम मिलेगा। कुछ रुपया धरम के कारज में लग जायेगा।"

"यह धरम-करम तुम्हें कब से सताने लगा?" महेसा ने कहा था।

"बहुत दिन की साध है मन में। ... मर जाऊंगी तो नाम का एक मंदिर तो रहेगा। दस दिलों से असीस निकलेगी।" पारबती ने कहा था।

मन में साध जागने के दिन आ गये थे। पारबती काफी बदल गयी थी। वह बदली-बदली लगती भी थी। महेसा को उसने बताया नहीं था कि वह अब मां बनने वाली थी। अगले दिनों की चिंता उसे सता रही थी। बस्ती का अस्पताल बहुत छोटा है। सगे-संबंधी भी नहीं जो बगत-जरूरत आ जाते। उसका भरोसा था कि अस्पताल में तकलीफ भी कम होती है। डॉक्टर जी ऐसी कोई दवा दे द्रेते हैं। महेसा ने भी भरोसा दिलाया था कि अस्पताल चले चलेंगे। पैसा सब देखभाल करा देगा। लेकिन पारबती बहुत डरी हुई थी। उसे डरावने सपने आने लगे थे। उसने महेसा से कहा था—"अब इतना बाहर मत रहा करो। ना जाने कब क्या हो जाये।"

महेसा भी डर गया था। उसका मन भरा-भरा रहता। वह कहीं दूर नहीं जाता। पारबती इस लायक भी नहीं थी कि उसे झील तक ले जाता और चिड़िया दिखाता। वहां की सुंदरता दिखाता। इसीलिए वह आसपास ही रहता। हाफिज जी बिसाती की दुकान पर थोड़ा समय बिताता। जिस किसी चीज को हाफिज जी

नयी चलन की बताते वह पारबती के लिए खरीद लाता—नाखूनों की लाली, कोई शीशा या और कुछ। आज वह छोटी फोटो फ्रेम खरीद लाया था। हाफिज जी ने बताया था—"इसमें मियां-बीवी की तस्वीर लगती है। बड़े घरों के लोग इसे रखते हैं।"

फ्रेम तो वह ले आया पर तस्वीर नहीं थी। उसने तीसरे ही दिन पारबती को तैयार किया। सारे गहने पहनने को मजबूर किया। खुद खूब तेल लगा कर रामा फोटोग्राफर की दूकान जा पहुंचा। पारबती के साथ फोटो खिंचवाया। उसे फ्रेम में लगा कर बरामदे वाली घरोंची पर सजा दिया। मन में सोच रहा था,ऐसी तस्वीर मुश्किल से किसी के घर मिलेगी।

महेसा इसी प्रकार घर में थोड़ी खुशी बिखेरना चाहता था। आज भी वह बिसाती के यहां से पारबती के लिए बालों में लगाने की विलायती पिनों का पत्ता खरीद लाया था। वह चाहता था कि पारबती अपने मन से डर को निकाल दे। वह पारबती की चिंता समझता था।

पारबती की दूसरी चिंता मंदिर की भी थी। उसने पूछा था—'मंदिर के मिस्त्री से मिले क्या?' महेसा ने चुंगी की जमीन की बात की तो पारबती ने कहा था

'चुंगी अगर बेचे तो अपने चबूतरे के पास का कूड़ाखाना हम खरीद लें। ... चबूतरे पर मंदिर हो जायेगा और उधर मुसाफिरों के लिए धरमसाला।' महेसा ने दिलासा दिया था कि मौका लगते ही खरीद लेंगे।

इतने में झील की ओर से चिड़ियों का शोर फिर सुनाई पड़ा था। महेसा का मन फिर बहक गया था। बोला था,शायद शिकारी फिर आये हैं। ऊपर आसमान में चक्रवाकों के डरे-सहमे जोड़े 'आंग-आंग' करते गुजर रहे थे। महेसा उदास हो गया था। बोला—"इन्हें मारने से फायदा? इत्ती सुंदर चिड़िया है पर मुर्दा खाती है।"

पारबती जानती थी कि महेसा से चिड़ियों का दुख देखा नहीं जाता। वह चिड़ियों को बहुत प्यार करता था। पारबती ने इसीलिए चिड़ियों की बात शुरू कर दी थी। यही सोच कर कि महेसा का मन हल्का हो जायेगा। खुद पारबती के तन-मन पर क्या बीत रही थी इसे पारबती ही जानती थी। फिर भी महेसा की खुशी के लिए उसने बात छेड़ी थी—"आजकल नई नई चिड़ियां बहुत दिखाई पड़ती हैं- पहचान भी नहीं पाती- ना जाने कहां-कहां से आ जाती हैं।"

बस यही काफी था। महेसा का मन उछला था। वह बताने लगा था—"ये चिड़ियां मेहमान हैं। कार्तिक

खतम होते आती हैं और फागुन चैत तक चली जाती हैं .... हमने तो चिड़ियों के अंडे भी जमा किये हैं, तुझे नहीं बताया, नहीं तो घर से निकाल देती। दिखाऊं?'' कह कर महेसा अंडे लेने दौड़ पड़ा। तुरंत कुछ अंडे ले आया और बताने लगा—''देख पारबती, यह वाक का अंडा है। यह सारस का और यह सोनपतारी का।'' महेसा एक-एक अंडा दिखा रहा था।

पारबती वैसे तो इन अंडों को नहीं छूती मगर सोनपतारी का अंडा हाथ में ले ही लिया। थोड़ा घुमाकर देखते ही वह हाथ से छूट गया। टूट गया। ''हाय दइया'', पारबती के मुंह से चीख निकली। चेहरे पर उदासी छा गयी। दिल धड़कने लगा। वह धीरे से बोली थी—''बहुत असुगन हो गया।'' उसने आंचल में मुंह छिपाया था और रो पड़ी थी। पारबती उस दिन वैसे ही रोई थी जैसे वो अस्पताल में रोई थी।

महेसा को सब याद था। अस्पताल का एक-एक दृश्य। पारबती की आंखों में उतरती शंका और उसके करीब आती मौत की छाया। महेसा को याद था कि कैसे पारबती ने उसे करीब बुलाया था और दिन चढ़ जाने व चीरा लगाने की बात बतायी थी। चीरे के नाम से पारबती सहम गयी थी। डर से उसका मन बैठ गया

था। महेसा ने समझाया था—"दिल क्यों छोटा करती हो पारबती! तुम जीती-जागती घर पहुंचोगी।"

मगर पारबती जीती-जागती घर नहीं पहुंची थी। बच्चा पेट में मर गया था। जहर सारे शरीर में फैल गया था। उसकी सांसे धीमी पड़ रही थीं। पारबती ने फिर उसे अपने करीब बुलाया था। कहा था—"अब मंदिर जरूर बनवा देना, पारबती-मंदिर।"

महेसा इस सच को झुठला देना चाहता था। वह चीख कर बोला था—"नहीं पारबती, नहीं। ऐसा मत



कहो। बच्चा मर गया तो क्या? तुम तो जीती-जागती हो।'' महेसा के पांवों तले की जमीन जैसे खिसक गयी थी। उसकी दुनिया लुट गयी थी। उसका सहारा छिन गया था। वह पगला गया था।

पारबती के वियोग में पागल महेसा को पैसे से प्यार हो गया था। वह पारबती द्वारा बाजार में बिखेरी हर दमड़ी वसूल लेना चाहता था। सूद की पाई भी नहीं छोड़ना चाहता था। उसके लिए हर पाई, हर दमड़ी जैसे पारबती की याद थी। पारबती की निशानी थी और पारबती की हर चीज पर केवल उसका अधिकार था। उतना ही जितना पारबती पर उसका अधिकार था।

पैसे-पैसे के लिए अड़ता महेसा घर में अकेला आठ-आठ आंसू रोता था। पारबती की हर निशानी को देखता। उसके कपड़े, चूड़ियां, बिंदिंया, उसकी संदूक में रखा सारा सामान और दीवार पर उठाई सगनौती की लकीरें। महेसा अपने अकेले पन में पगला गया था।

इधर मंदिर की बात भी उसके माथे पर सवार थी। वह हर तरफ से पैसा वसूलता। उगाही करता और सब जगह मंदिर की बात करता। कई लोग मंदिर के नाम पर मदद करने को तैयार थे। बिसाती हाफिज जी भी तैयार थे और मारवाड़ी मिलवाले भी। उन्होंने पचास

रुपये दे भी दिये थे। महेसा के मन पर बोझ था। वह इस बोझ को हल्का करने फिर झील की तरफ चला जाता था। सैलानियों के पीछे। उनके साथ चल रही औरतों के पीछे। मगर अब उसका मन केवल पक्षियों में रमता था। झील में पनाह पाता था। झील के सिवा उसका अब कोई नहीं था।

आज भी वह झील के किनारे ही घूम रहा था। नीली-झील खामोश थी। किनारों पर नमी थी। घास की टहनियां हवा के साथ पानी को सहला रही थीं। उसका मन सवन हंसों में रम गया था। हंस मेहमान थे। कब आये हैं और जाने कब चले जायेंगे। पारबती की तरह। इतने में ही एक भयंकर धड़ाके की आवाज से उसका दिल कांप गया था। बाईं ओर फैले दलदल से सारसनी की तेज चीख आयी और गूंजती रही। वह बार-बार चीख रही थी। सारस कुछ ऊपर ही चक्कर काट रहा था। कभी नीचे उतर कर चीखता तो कभी लंबे डग भर कर इधर-उधर लपकता। महेसा को फिर एक बार पारबती की चीख सुनाई दी थी। उसकी अपनी हालत सारस से बेहतर नहीं थी। उसका मन फिर एक बार उदासी से भर गया था। एक लंबी सांस छोड़ कर, मन ही मन, बुदबुदाता कि 'इन परदेसी पंछियों से क्या

नाता जोड़ना!' वह घर लौट आया था।

इस बार जब चुंगी वालों की बोली लगी तो महेसा भी वहां था। नीलामी वाले दिन उसने तीस हजार की बोली लगा कर नीली-झील खरीद ली। लोगों की आंखें फट गईं। इसका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है। मंदिर के नाम पर रुपया हजम कर गया। लेकिन उसने किसी को कोई जवाब नहीं दिया। मन में लगा कि पारबती को भी क्या जवाब देगा अब? मगर वह झील की तरफ गया था। झील वाले रास्ते के पहले पेड़ पर उसने एक तख्ती टांग दी थी। तख्ती पर लिखा था—"यहां शिकार करना मना है—दस्तखत महेसा पांडे, नीली-झील का मालिक।"

महेसा को भरोसा था कि अब यहां कोई सारस अपनी सारसनी के बिछोह में चीखेगा नहीं। उसकी दुनिया वीरान नहीं होगी। किसी सोनपतारी के झुंड में से कोई पक्षी गोली खा कर, बिलबिला कर गिरेगा नहीं। उसे भरोसा था कि सवन हंसों के झुंड यहां हर साल आयेंगे। सफेद सुरखाब भी आयेंगे। नीली-झील को आबाद करेंगे। हर साल। हर बरस। सदा की तरह।

रु. 8.00 ISBN 81-237-1763-6

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

